Sarcouncil Journal of Humanities and Cultural Studies

ISSN(Online): 2945-3658

Volume- 04| Issue- 04| 2025

Review Article **Received:** 15-07-2025 | **Accepted:** 10-08-2025 | **Published:** 25-08-2025

बाबा साहेब अम्बेडकर और दलित आंदोलन: सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और मानवीय समानता का पुस्तक-आधारित समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ नरेश कुमार वर्मा

सह आचार्य राजकीय महाविद्यालय टोंक (राजस्थान)

Abstract: यह समीक्षा-पत्र पुस्तक-आधारित दृष्टिकोण से बाबा साहेब डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर के विचारों और दलित आंदोलन के विकास को समझने का प्रयास करता है। अम्बेडकर का संघर्ष सिर्फ अस्पृश्यता के खिलाफ नहीं था; वह जाति-व्यवस्था के वैचारिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आधारों को भी चुनौती देता था। उन्होंने दलितों को दया, सुधार या परोपकार के स्थान पर अधिकार, प्रतिनिधित्व और आत्मसम्मान का विषय बनाया। शिक्षा, संगठन, राजनीतिक भागीदारी, संवैधानिक संरक्षण, सामाजिक लोकतंत्र और बौद्ध धम्म को उनके विचार में मुक्ति का सबसे बड़ा साधन मानते थे। यह समीक्षा सामाजिक सुधार से दलित आंदोलन को लोकतांत्रिक अधिकारों की राजनीति में बदलने के लिए अम्बेडकर की प्रमुख कृतियों (Annihilation of Caste, Who Were the Shudras?, The Untouchables, What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables) पर आधारित है। अध्ययन ने पाया कि अम्बेडकर का दलित आंदोलन भारतीय लोकतंत्र की नैतिक परीक्षा है और बंधुत्व, समानता और स्वतंत्रता पर आधारित समाज-निर्माण की वैचारिक योजना भी है।

Keywords: बाबा साहेब अम्बेडकर; दलित आंदोलन; जाति-व्यवस्था; अस्पृश्यता; सामाजिक न्याय; प्रतिनिधित्व; संविधान; बौद्ध धम्म।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में जाति न सिर्फ सामाजिक वर्गीकरण की व्यवस्था थी, बल्कि श्रम, सम्मान, संसाधन, ज्ञान, सत्ता और धार्मिक वैधता का वितरण भी नियंत्रित करती थी। इस प्रणाली ने कहा कि अस्पृश्य समुदाय सामाजिक जीवन से बाहर रहे। उन्हें धार्मिक रूप से अपवित्र, सामाजिक रूप से कमजोर, आर्थिक रूप से आश्रित और राजनीतिक रूप से प्रतिनिधित्वहीन बनाया गया। डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का जन्म आजाद भारत में सबसे बड़े बौद्धिक और राजनीतिक बदलावों में से एक है। अम्बेडकर ने दलितों की समस्या को सिर्फ सामाजिक सुधार का मुद्दा नहीं माना; वह उसे सत्ता, ज्ञान, धर्म, कानून और लोकतंत्र से जुड़ा गया (अम्बेडकर, 1936/1979)।

अम्बेडकर ने कहा कि जाति-व्यवस्था का उन्मूलन केवल बाहरी सुधारों से नहीं हो सकता था क्योंकि जाति का आधार धार्मिक-सांस्कृतिक वैधता, सामाजिक आदतों और सत्ता-संबंधों में गहराई तक था। Annihilation of Caste में, उन्होंने जाति को हिंदू सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख समस्या के रूप में देखा और कहा कि वास्तविक लोकतंत्र बिना जाति-विनाश के संभव नहीं हो सकता (Ambedkar, 1936/1979)। उनके लिए स्वतंत्रता का मतलब सिर्फ ब्रिटिश शासन से मुक्ति नहीं था, बल्कि अपमान, असमानता और बहिष्कार से भी मुक्ति था। यही कारण है कि अम्बेडकर का दलित आंदोलन एक सामाजिक लोकतांत्रिक आंदोलन के रूप में जन्म लेता है, जो राष्ट्रवाद की आम प्रवृत्ति से अलग है।

दलित आंदोलन की ऐतिहासिकता को समझने के लिए अम्बेडकर को सामाजिक दार्शनिक, जाति-आलोचक, आंदोलनकारी, संगठनकर्ता और वैकल्पिक नैतिकता के निर्माता के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। गेल ऑमवेट ने दलित आंदोलन को औपनिवेशिक भारत में हुई लोकतांत्रिक क्रांति से जोड़ा और कहा कि अम्बेडकर ने दलितों को राजनीतिक चेतना और सामूहिक संगठन की प्रेरणा दी (Amwett, 1994)। एलेनोर ज़ेलियट (2001) ने बताया कि अस्पृश्य से दलित तक की यात्रा सिर्फ नाम बदलने की नहीं थी, बल्कि संघर्ष और आत्मसम्मान की नई पहचान का निर्माण भी था।

अध्ययन का उद्देश्य और पद्धति

पुस्तक-आधारित इस समीक्षा-पत्र का मुख्य उद्देश्य बाबा साहेब अम्बेडकर के विचारों और दलित आंदोलन के वैचारिक, सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का विश्लेषण करना है। अध्ययन का मुख्य मुद्दा यह है कि अम्बेडकर ने शिक्षा, संगठन, संघर्ष, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, संवैधानिक संरक्षण और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण से दलित समाज की मुक्ति को कैसे जोड़ा। यह भी देखा गया है कि दलित आंदोलन ने भारतीय लोकतंत्र को किस प्रकार चुनौती दी और उसे अधिक समावेशी बनाने के लिए वैचारिक आधार दिए।

यह लेख प्रक्रिया के स्तर पर वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक समीक्षा पर आधारित है। इसमें अम्बेडकर की मूल रचनाओं का उपयोग किया गया है, साथ ही दलित आंदोलन पर लिखी गई प्रमाणिक पुस्तकों का भी उपयोग किया गया है। प्रमुख स्रोतों में डा. बाबासाहेब अम्बेडकर: लिपि और भाषणों के खंड; गेल ऑमवेट की दलितों और डेमोक्रेटिक क्रांति; एलेनोर ज़ेलियट की From Untouchable to Dalit; क्रिस्टोफ जाफ्रेलो की Dr. Ambedkar and Untouchability;

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

***Corresponding Author:** डॉ नरेश कुमार वर्मा

DOI- https://doi.org/10.5281/zenodo.20158493

रामनारायण एस. रावत की Reconsidering Untouchability; शार्मिला रेगे की Against the Madness of Manu; और आनंद तेलतुंबड़े की Republic of Caste शामिल इन पुस्तकों के आधार पर अम्बेडकरवादी विचारधारा की समीक्षा की गई है, जो सामाजिक न्याय, दलित अस्मिता, प्रतिनिधित्व और जाति-विरोधी राजनीति को शामिल करती है।

यह अध्ययन मूलतः पुस्तकों पर आधारित है; इसलिए इसमें वैचारिक व्याख्या, उपलब्ध ऐतिहासिक विवरण और समाजशास्त्रीय विश्लेषण को तुलनात्मक ढंग से पढ़ा गया है। मकसद सिर्फ अम्बेडकर की जीवनी नहीं है; बल्कि, उनके विचारों ने दलित आंदोलन को आधुनिक लोकतांत्रिक आंदोलन में बदल दिया।

अम्बेडकर का वैचारिक आधार: जाति की मूल आलोचना

गांधीजी का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने जाति को एक संगठित असमानता की प्रणाली के रूप में देखा, न कि केवल सामाजिक बुराई या नैतिक दोष। उनके लिए जाति एक ऐसी व्यवस्था थी जो समाज को टुकड़ों में विभाजित करती थी और हर टुकड़े को एक जन्मस्थान देती थी। इस व्यवस्था में व्यक्ति की स्वतंत्रता, क्षमता और मानवीय गरिमा का कोई मूल्य नहीं है। सामाजिक जाति नष्ट करने में अम्बेडकर ने कहा कि जाति का मुद्दा सिर्फ अस्पृश्यों का नहीं है, बल्कि पूरे भारतीय समाज की लोकतांत्रिक संभावना का है (अम्बेडकर, 1936/1979)।

गांधी ने कहा कि जाति-व्यवस्था सामाजिक एकता को असंभव बनाती है। वह बंधुत्व के खिलाफ है क्योंकि यह समान मनुष्यता की स्वीकृति पर आधारित है। मनुष्य पहले जाति का सदस्य होता है, फिर मनुष्य होता है। इसलिए अम्बेडकर ने राजनीतिक लोकतंत्र के लिए सामाजिक लोकतंत्र अनिवार्य था। उन्हें लगता था कि केवल मतदान का अधिकार लोकतंत्र को सुरक्षित नहीं रख सकता अगर समाज में समानता और एकता नहीं है (अम्बेडकर, 1936/1979)।

क्रिस्टोफ जाफ्रेलो ने अम्बेडकर को एक आधुनिक जाति-विरोधी चिंतक के रूप में पढ़ते हुए कहा कि उनका संघर्ष तीन चरणों में होता है—सामाजिक मूल्यों, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और धार्मिक-सांस्कृतिक स्वतंत्रता (Jaffrelo, 2005) इस तरह, अम्बेडकर भारतीय आधुनिकता को वैकल्पिक आधुनिकता के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिसमें व्यक्ति की गरिमा, विधिक समानता और सामाजिक परिवर्तन को महत्वपूर्ण महत्व दिया जाता है।

गांधीजी की जाति-आलोचना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा यह है कि वे जाति को सिर्फ ग्रामीण समाज की समस्या नहीं मानते थे। उनका कहना है कि राजनीतिक निर्णय, धार्मिक विश्वास, विवाह-व्यवस्था, जाति मानसिकता और सामाजिक संबंधों में सब कुछ शामिल है। इसलिए जाति-विनाश का मतलब सिर्फ कानून की सुधार नहीं है; इसका मतलब सामाजिक चेतना का बदलाव भी है। बाद में, यही विचार दलित आंदोलन का मानसिक आधार बनता है।

अस्पृश्यता का प्रश्न और अम्बेडकर की ऐतिहासिक दृष्टि

अम्बेडकर ने अस्पृश्यता को सिर्फ धार्मिक रिवाज नहीं देखा। उसके ऐतिहासिक, आर्थिक और सामाजिक आधारों का पता लगाया गया। Untouchables: Who They Were and Why Were They Untouchables? उसने अस्पृश्यता की उत्पत्ति को भोजन-संबंधी प्रतिबंधों, सामाजिक-धार्मिक संघर्षों और सामाजिक बहिष्कार की प्रक्रियाओं से जोड़कर समझाया (अम्बेडकर, 1948/2013)। यह पुस्तक महत्वपूर्ण है क्योंकि अम्बेडकर ने अस्पृश्य समुदायों को इतिहासहीन समूह के रूप में नहीं देखा, बल्कि उनके अतीत की खोज की।

क्या Shudras थे? वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति और शूद्रों की स्थिति पर पुनर्विचार करते हुए अम्बेडकर उन्होंने ब्राह्मणवादी ग्रंथों की व्याख्याओं को अंतिम सत्य मानने से इनकार करते हुए इतिहास को आलोचनात्मक रूप से पढ़ने का आह्वान किया (अम्बेडकर, 1946/2013)। यह प्रक्रिया दलित इतिहासलेखन की बुनियाद रखती है क्योंकि इससे उत्पीड़ित समुदायों को उनके अतीत और पहचान को पुनर्परिभाषित करने की वैचारिक क्षमता मिलती है।

रामनारायण एस. रावत ने उत्तर भारत के चमार समुदाय के इतिहास की पुनर्व्याख्या करते हुए दिखाया कि दलितों को केवल पीड़ित या निष्क्रिय श्रम-समूह के रूप में देखना अधूरा है। वे आर्थिक, सामाजिक और ऐतिहासिक घटनाओं में सक्रिय हैं (Raat, 2011) इस तरह, अम्बेडकर की ऐतिहासिक दृष्टि बाद के दलित इतिहासलेखन का आधार बनती है।

अम्बेडकर का राजनीतिक उद्देश्य भी अस्पृश्यता की ऐतिहासिक समीक्षा था। यदि किसी समुदाय को सदियों तक अपवित्र घोषित करके सामाजिक संसाधनों से बाहर रखा गया है, तो सिर्फ नैतिक उपदेश पर्याप्त नहीं होगा। न्याय, प्रतिनिधित्व और पुनर्वितरण उसे चाहिए होंगे। इसलिए अम्बेडकर कानून, सामाजिक आंदोलन और राजनीतिक शक्ति को अस्पृश्यता के उन्मूलन से जोड़ते हैं।

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

Publisher: SARC Publisher

दलित आंदोलन का राजनीतिक रूपांतरण

सामाजिक सुधार और जातिविरोधी कई प्रयास अम्बेडकर से पहले भी हुए थे। दक्षिण भारत में गैर-ब्राह्मण आंदोलनों जैसे ज्योतिराव फुले, सावित्रीबाई फुले और शाहू महाराज ने सामाजिक असमानता के खिलाफ संघर्ष की नींव डाली। लेकिन अम्बेडकर ने दलितों का मुद्दा राजनीतिक अधिकारों में बदल दिया। उच्च जातियों की सद्भावना या सुधारवादी करुणा उनके लिए दलितों को छुटकारा नहीं दे सकती थी। दलितों को प्रतिनिधि, संगठन और राजनीतिक अधिकार चाहिए (Oamwett, 1994)।

अम्बेडकर ने दलित आंदोलन को संगठित राजनीतिक रूप देने के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा, महाड़ सत्याग्रह, मंदिर प्रवेश आंदोलन, पृथक निर्वाचक मंडल की मांग और स्वतंत्र मजदूर पार्टी का गठन किया। महाड़ सत्याग्रह विशेष रूप से महत्वपूर्ण था क्योंकि वह सिर्फ पानी पीने का अधिकार नहीं था, बल्कि दलितों को सार्वजनिक संसाधनों पर नागरिक अधिकार देना चाहता था (कीर, 1954)।

महाड़ में जल अधिकार का मुद्दा नागरिकता था। दलितों को पानी जैसी बुनियादी वस्तु से वंचित करना बताता था कि वे सार्वजनिक जीवन में बराबर के हिस्से नहीं मानते थे। अम्बेडकर ने इस बहिष्कार को खारिज करते हुए दिखाया कि दलितों का संघर्ष केवल धार्मिक सुधार के लिए नहीं था, बल्कि सार्वजनिक क्षेत्र में समान अधिकारों के लिए था। मनुस्मृति दहन भी इसी विचारधारा का प्रतीक था, जिसके माध्यम से अम्बेडकर ने ब्राह्मणवादी सामाजिक विधान की असमानता को खारिज कर दिया (Jellyt, 2001

गांधीजी के नेतृत्व वाले दलित आंदोलन ने दलितों को भारतीय राजनीति में एक स्वतंत्र सामाजिक-राजनीतिक शक्ति के रूप में स्थापित किया, जिसे गेल ऑमवेट ने लोकतांत्रिक क्रांति की प्रक्रिया बताया (Amwett, 1994)। एलेनोर ज़ेलियट (2001) कहते हैं कि दलितों में अम्बेडकर आंदोलन ने आत्मसम्मान, संगठन और वैचारिक चेतना का विकास किया, इसलिए वे सिर्फ सुधार के पात्र नहीं रहे, बल्कि परिवर्तन के सक्रिय एजेंट बने।

गांधी-अम्बेडकर विवाद और प्रतिनिधित्व का प्रश्न

गांधी और अम्बेडकर के मतभेद दलित आंदोलन के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण हैं। गांधी ने अस्पृश्यता को हिंदू समाज की धार्मिक बुराई समझा और उसे सुधार के माध्यम से दूर करना चाहा। विपरीत, अम्बेडकर ने जाति और अस्पृश्यता को संरचनात्मक अन्याय समझा और दलितों के स्वतंत्र राजनीतिक प्रतिनिधित्व की जरूरत बताई। 'क्या कांग्रेस और गांधी ने अस्पृश्यता-विरोधी राजनीति की आलोचना करते हुए, अम्बेडकर ने कहा कि क्या दलितों की राजनीतिक आवाज़ वास्तव में उनके हाथ में है या उच्च जातीय नेतृत्व के अधीन है (अम्बेडकर, 1945/2013)।

इसी संदर्भ में पृथक निर्वाचक मंडल और पूना पैक्ट का विवाद समझा जाना चाहिए। अम्बेडकर का विचार था कि अगर दलितों को स्वतंत्र राजनीतिक प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा, तो वे बहुसंख्यक हिंदू समाज में फिर से नियंत्रित हो जाएंगे। गांधी ने एक अलग निर्वाचक मंडल का विरोध किया, जिससे पूरा कानून बन गया। इस समझौते ने दलितों के लिए सीटें तो दी, लेकिन राजनीतिक स्वतंत्रता का विचार कमजोर हो गया (अम्बेडकर, 1945/2013; (जाफ्रेलो, २००५)

यह बहस सिर्फ दो लोगों के मतभेद नहीं था; यह दलित मुक्ति के दो अलग विचारों का संघर्ष था। एक पक्ष दलितों को हिंदू समाज में सुधार करके स्थान देना चाहता था, जबकि दूसरा पक्ष दलितों को स्वतंत्र राजनीतिक शक्ति और स्वतंत्र नागरिकता देना चाहता था। वर्तमान दलित राजनीति में अम्बेडकर का विचार महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आधुनिक लोकतांत्रिक अधिकारों पर आधारित था।

साथ ही, गांधी-अम्बेडकर संवाद की आलोचनात्मक जांच से पता चलता है कि सामाजिक न्याय में प्रतिनिधित्व का मुद्दा सिर्फ सांकेतिक नहीं है। वंचित लोगों की समस्याएं दूसरों की भाषा में सीमित हो जाती हैं अगर वे अपनी बात खुद नहीं कह सकते। यही कारण है कि अम्बेडकर ने प्रतिनिधित्व को दलितों की आत्मनिर्णय की प्रेरणा माना।

शिक्षा, संगठन और संघर्ष: अम्बेडकरवादी आंदोलन की त्रयी

शिक्षा, संगठन और संघर्ष अम्बेडकरवादी राजनीति का मुख्य आधार रहे हैं। शिक्षा, अम्बेडकर के लिए, केवल नौकरी पाने का माध्यम नहीं था, बल्कि चेतना, आत्मसम्मान और सामाजिक मुक्ति का साधन थी। जाति-व्यवस्था का ज्ञान नियंत्रित था; यही कारण था कि शिक्षा प्राप्त करना उस नियंत्रण को तोड़ने का राजनीतिक प्रयास था। धनंजय कीर ने बताया कि अम्बेडकर की व्यक्तिगत शैक्षिक यात्रा सामूहिक मुक्ति के विचार में बदलती है (कीर, 1954)। सत्ता-संरचनाओं का सामना करने में असमर्थ होने के कारण अम्बेडकर ने संगठन की जरूरत महसूस की। इसी संगठनात्मक विचार ने बहिष्कृत हितकारिणी सभाओं और बाद की राजनीतिक संस्थाओं को जन्म दिया। उनके लिए संघर्ष

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

Publisher: SARC Publisher

का मतलब था राजनीतिक, सामाजिक, बौद्धिक और संवैधानिक प्रतिरोध, न कि हिंसक। इसके उदाहरणों में महाड़ सत्याग्रह, मनुस्मृति दहन, मंदिर प्रवेश आंदोलन और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग शामिल हैं (Oamwett, 1994)। Jellyt, 2001

दलित आंदोलन की मूल दिशा आज भी अम्बेडकर का यह सूत्र निर्धारित करता है। शिक्षा दलितों को ज्ञान और आत्मविश्वास देती है, संगठन सामूहिक शक्ति देता है, और संघर्ष सामाजिक परिवर्तन की ओर ले जाता है। इसलिए स्कूल, छात्रावास, पत्र-पत्रिकाएँ, सभा-संगठन और राजनीतिक मंच अम्बेडकरवादी आंदोलन में बदलाव के साधन रहे हैं।

आत्मसम्मान भी संगठन और शिक्षा से जुड़ा हुआ है। जब तक समाज अपमानित मानसिकता से मुक्त नहीं हो जाता, वह अपनी स्थिति को बदल नहीं सकता। अम्बेडकर ने दलितों को यह संदेश दिया कि वे अपनी सामाजिक स्थिति को ज्ञान, अधिकार और संघर्ष के बल पर बदलें, न कि दूसरों की सहायता से।

संविधान और सामाजिक न्याय की अम्बेडकरवादी दृष्टि

भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे, लेकिन अम्बेडकर को सिर्फ विधिक निर्माता के रूप में ही देखना उचित नहीं होगा। उनके लिए संविधान सामाजिक बदलाव का साधन था। सामाजिक न्याय की दिशा में संविधान में समानता, स्वतंत्रता, विधि के समक्ष समान संरक्षण, अस्पृश्यता-निषेध और आरक्षण जैसे प्रावधान महत्वपूर्ण कदम थे। किंतु अम्बेडकर को यह भी पता था कि लोकतांत्रिक नैतिकता का विकास ही संविधान को प्रभावी बनाएगा (Jaffrelo, 2005)।

डॉ. अम्बेडकर ने राजनीतिक लोकतंत्र से सामाजिक लोकतंत्र को अलग किया। राजनीतिक लोकतंत्र में लोगों को मतदान करने का अधिकार मिलता है, लेकिन सामाजिक लोकतंत्र में लोगों को सम्मान, समान अवसर और सामाजिक स्वीकृति मिलती है। जाति-आधारित असमानता समाज में जारी रहेगी, तो संविधान की समानता व्यवहार में पूरी नहीं होगी (अम्बेडकर, 1936/1979)।

ओलिवर मेंडेलसन और मारिका विचियानी ने राज्य, गरीबी और सामाजिक अधीनता के संदर्भ में दलितों की स्थिति को देखते हुए कहा कि सामाजिक और आर्थिक असमानता कानूनी प्रावधानों के बावजूद जारी रहती है (मेंडेलसन और विचियानी, 1998)। यही कारण है कि अम्बेडकरवादी विचारधारा केवल कानून बनाने तक सीमित नहीं है, बल्कि लोकतांत्रिक संस्कृति और कानून की सामाजिक क्रियान्वयन पर भी बल देती है।

इसी व्यापक संदर्भ में आरक्षण व्यवस्था को भी समझना चाहिए। यह केवल वित्तीय सहायता या दया का साधन नहीं है, बल्कि ऐतिहासिक बहिष्कार से उत्पन्न प्रतिनिधित्वहीनता को कम करने का संवैधानिक साधन है। अम्बेडकर ने कहा कि लोकतंत्र न्यायपूर्ण होगा जब समाज के सभी वर्ग निर्णय-प्रक्रिया में भाग ले सकते हैं।

बौद्ध धम्म और दलित मुक्ति

डॉ॰ अम्बेडकर ने अपने जीवन का अंतिम बड़ा कदम बौद्ध धर्म में प्रवेश करना था। यह सिर्फ धार्मिक बदलाव नहीं था; यह जाति-व्यवस्था से मानसिक और सांस्कृतिक अलगाव की घोषणा भी थी। अम्बेडकर ने हिंदू धर्म की जातिवादी संरचना की आलोचना की और देखा कि बौद्ध धम्म में समानता, तर्क, करुणा और नैतिकता के मूल्य हैं। धर्म उनके लिए नैतिक समाज का निर्माण था, न कि अंधविश्वास ((जाफ्रेलो, २००५)

1956 में अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म अपनाया, जो दलित आंदोलन में एक ऐतिहासिक घटना बन गया था। इससे दलित समुदाय को राजनीतिक और सांस्कृतिक पुनर्जन्म दोनों मिला। Jellyt (2001) ने बताया कि अम्बेडकरवादी बौद्ध आंदोलन ने दलितों की पहचान बदलने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। दलितों को इस बदलाव ने अपमानजनक सामाजिक पहचान से निकालकर समानता पर आधारित नई पहचान दी।

सामाजिक नैतिकता बौद्ध धर्म का अम्बेडकरवादी संस्करण है। इसमें बंधुत्व, स्वतंत्रता और समानता जीवन-मूल्य बन जाते हैं, न सिर्फ राजनीतिक आदर्श। यही कारण है कि अम्बेडकर का बौद्ध धर्मांतरण दलित आंदोलन की सांस्कृतिक राजनीति में एक महत्वपूर्ण घटना माना जाना चाहिए।

बौद्ध धर्मांतरण के माध्यम से अम्बेडकर ने यह भी बताया कि जाति से मुक्ति केवल राजनीति या कानून से नहीं मिलेगी। सामाजिक अपमान की जड़ें तब तक बनी रहती हैं जब तक उत्पीड़ित समुदाय अपने सांस्कृतिक प्रतीक, धार्मिक पहचान और आत्म-छवि को पुनर्जीवित नहीं करता। यही कारण है कि नवयान बौद्ध धम्म दलित आंदोलन की आत्मसम्मान-चेतना महत्वपूर्ण है।

दलित स्त्री, ब्राह्मणवादी पितृसत्ता और अम्बेडकरवादी दृष्टि

अम्बेडकर का दलित मुद्दा सिर्फ पुरुष दलितों की राजनीतिक मुक्ति नहीं था। स्त्रियों के अधिकार, विवाह, संपत्ति, श्रम और सामाजिक सम्मान के मुद्दों पर भी उन्होंने गम्भीरता से विचार किया। हिंदू कोड बिल के पक्ष में उनकी लड़ाई दिखाती है कि वे सामाजिक न्याय को लैंगिक न्याय से अलग नहीं करना चाहते थे। शार्मिला रेगे ने अम्बेडकर की रचनाओं को ब्राह्मणवादी पितृसत्ता

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

Publisher: SARC Publisher

की आलोचना के रूप में पढ़ते हुए यह दिखाया है कि जाति और पितृसत्ता एक-दूसरे को मजबूत करते हैं (रेगे, 2013)।

लिंग, जाति और वर्ग के संयुक्त उत्पीड़न से दलित महिलाओं की स्थिति बनती है। मुख्यधारा के जाति-विरोधी बहस में जाति प्रश्न अक्सर हाशिये पर रहता है, जबकि मुख्यधारा के स्त्रीवादी बहस में जाति प्रश्न पर्याप्त नहीं होता। इन दोनों सीमाओं को अम्बेडकरवादी विचारधारा नकारती है। वह कहती है कि शुद्धता, स्त्री-नियंत्रण और विवाह-व्यवस्था जाति के पुनरुत्पादन में महत्वपूर्ण हैं (रेगे, 2013)।

इस संदर्भ में दलित आंदोलन का व्यापक होना स्पष्ट है। यह सिर्फ जातिगत अपमान से मुक्ति नहीं है; यह उन सामाजिक संबंधों की भी आलोचना है जिनमें स्त्री की देह, श्रम और जीवन पर नियंत्रण है। इसलिए, अम्बेडकरवादी सामाजिक लोकतंत्र के लिए समकालीन दलित आंदोलन में दलित स्त्रियों की आवाज़ को प्रमुखता देना अनिवार्य है।

समकालीन संदर्भ में अम्बेडकर और दलित आंदोलन

आज दलित आंदोलन कई रूपों में आता है:संवैधानिक अधिकारों की रक्षा, आरक्षण नीति, शिक्षा में प्रतिनिधित्व, भूमि और श्रम का मुद्दा, जातीय हिंसा के खिलाफ संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता, साहित्यिक प्रतिरोध और डिजिटल आंबेडकरवाद सामाजिक न्याय की सार्वभौमिक भाषा आज अम्बेडकर को केवल एक ऐतिहासिक नेता के रूप में नहीं देखा जाता है।

फिर भी गंभीर चुनौतियाँ हैं। आज भी जाति सामाजिक संबंधों, शादी, शिक्षा, रोजगार, राजनीति और ग्रामीण सत्ता-संरचना पर प्रभाव डालती है। आनंद तेलतुंबड़े ने समकालीन भारत में जाति और राज्य के संबंधों की समीक्षा करते हुए कहा कि सामाजिक असमानता और जातीय वर्चस्व नए रूपों में जारी हैं, हालांकि संविधानिक समानता है (तेलतुंबड़े, 2018)। इसका मतलब यह है कि अम्बेडकरवादी आंदोलन को सिर्फ प्रतीकात्मक सम्मान नहीं मिलना चाहिए; उसे वास्तविक रूप से सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं में बदलाव लाने के लिए काम करना होगा।

वर्तमान दलित आंदोलन में एक महत्वपूर्ण समस्या है कि अम्बेडकर की विरासत को राजनीतिक और वैचारिक रूप से कैसे इस्तेमाल किया जाए? बहुत से राजनीतिक दल अम्बेडकर की प्रतिमा और नाम का प्रयोग करते हैं, लेकिन जाति-विनाश, आर्थिक न्याय और सामाजिक लोकतंत्र की उनकी योजनाओं को गंभीरता से नहीं लेते। यही कारण है कि अम्बेडकर के विचारों को केवल स्मारक, जयंती और प्रतीक तक सीमित करने के बजाय, उन्हें सामाजिक नीति, शिक्षा, भूमि सुधार, प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक लोकतंत्र से जोड़ना चाहिए।

अम्बेडकरवादी विचारों का प्रसार आज डिजिटल माध्यमों से हुआ है। युवा दलित सोशल मीडिया, ऑनलाइन पुस्तकालय, डिजिटल आर्काइव और बहसों के माध्यम से सामाजिक न्याय की माँग करते हैं। लेकिन निरंतर प्रतीकवाद और डिजिटल असमानता अभी भी हैं। इसलिए, समकालीन आंदोलन को संगठनात्मक निरंतरता और वैचारिक गहराई दोनों की आवश्यकता है।

साहित्यिक और सांस्कृतिक प्रभाव

दलित साहित्य भी अम्बेडकरवादी आंदोलन से प्रभावित हुआ। दलित साहित्य ने जाति-आधारित अपमान, श्रम, पीड़ा, विद्रोह और आत्मसम्मान को शब्दों में व्यक्त किया। यह साहित्य केवल दया की भावना को जगाने के लिए नहीं लिखा गया; इसके बजाय, यह सामाजिक संरचना की आलोचना करता है। अम्बेडकरवादी चेतना से प्रेरित दलित आत्मकथाएँ, कविताएँ और कहानियाँ अनुभव को ज्ञान में बदलती हैं।

Jellyt (2001) का अध्ययन बताता है कि अम्बेडकर आंदोलन ने महाराष्ट्र सहित भारत के कई हिस्सों में सांस्कृतिक चेतना को जन्म दिया। यह सांस्कृतिक चेतना दलित समुदाय को यह कहने की शक्ति देती है कि उनका इतिहास, श्रम और अनुभव भारतीय समाज की मुख्यधारा का हिस्सा हैं। सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन ने जाति को एक स्मृति, भाषा और साहित्य का मुद्दा भी बताया।

आत्मकथा दलित साहित्य में खास महत्व रखती है क्योंकि यह जाति के अमूर्त सिद्धांत को वास्तविक घटनाओं में बदल देती है। जब लेखक अपनी भाषा में दलित जीवन की पीड़ा, अपमान और संघर्ष को बताता है, तो वह ज्ञान-उत्पादन की सामान्य संरचना को चुनौती देता है। इसलिए अम्बेडकरवादी साहित्य इतिहास, सामाजिक विज्ञान और राजनीति के लिए भी महत्वपूर्ण स्रोत है।

आलोचनात्मक समीक्षा

दलित आंदोलन और अम्बेडकर पर लेखों से तीन महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं। पहले, अम्बेडकर ने दलितों की समस्या को नैतिक दया से बाहर निकालकर लोकतांत्रिक अधिकार की ओर बढ़ा दिया। दूसरा, उन्होंने जाति-व्यवस्था को धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और आर्थिक रूप से भी समझाया। तीसरा, उन्होंने दलितों को शिक्षा, संगठन, सांस्कृतिक

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

Publisher: SARC Publisher

पुनर्जागरण और बौद्ध नैतिकता से जोड़ा, न कि सिर्फ कानून या राजनीति से।

फिर भी दलित आंदोलन की सीमा भी देखनी चाहिए। दलितों की जातिगत सामाजिक व्यवस्था स्वतंत्रता के बाद समाप्त नहीं हुई, लेकिन संविधानिक अधिकारों ने उन्हें नए अवसर दिए। आरक्षण ने प्रतिनिधित्व को बढ़ा दिया, लेकिन आर्थिक असमानता, भूमिहीनता, जातीय हिंसा और सामाजिक बहिष्कार अभी भी चल रहे हैं। मेंडेलसन और विचियानी ने कहा कि गरीबी, राज्य और सामाजिक अधीनता के व्यापक संदर्भ में दलित मुद्दे को समझना आवश्यक है (मेंडेलसन और विचियानी, 1998)।

विभिन्न दलित जातियों, क्षेत्रों, भाषाओं और वर्गों के बीच समान राजनीतिक मंच बनाना अम्बेडकरवादी आंदोलन की एक और चुनौती है। स्वयं दलित समाज भी समान नहीं है। उसके भीतर जातिगत, आर्थिक, शैक्षिक और क्षेत्रीय भेद हैं। इसलिए, अम्बेडकर के चार मूल सिद्धांतों—समानता, आत्मसम्मान और सामाजिक लोकतंत्र—को समकालीन दलित आंदोलन में व्यापक सामाजिक एकता में बदलना होगा।

यह भी आलोचनात्मक हो सकता है कि अम्बेडकर की विरासत को चुनावी राजनीति में सीमित करने से उनकी वैचारिक शक्ति कम हो जाती है। समाज का नैतिक पुनर्निर्माण अम्बेडकर का मूल लक्ष्य था। दलित आंदोलन की परिवर्तनकारी क्षमता सीमित हो सकती है अगर जाति-विरोध केवल प्रतीकात्मक कार्यक्रमों तक सीमित रहता है और सामाजिक-आर्थिक असमानता को दूर किया जाता है।

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र का इतिहास बाबा साहेब अम्बेडकर और दलित आंदोलन से घिरा हुआ है। अम्बेडकर ने दलितों को सिर्फ एक पीड़ित वर्ग नहीं देखा, बल्कि एक परिवर्तनकारी राजनीतिक शक्ति के रूप में देखा। उन्हें जाति-व्यवस्था की बुनियादी बातों पर चोट पहुँचाई और दिखाया कि सामाजिक समानता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता असम्भव है।

उनका आंदोलन तीन चरणों में कार्य करता है:पहले, जाति और अस्पृश्यता के बारे में विचारधारा का विश्लेषण; दूसरा, दलितों को संवैधानिक अधिकारों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग; तीसरा, धार्मिक और सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की ओर बौद्ध धर्म की ओर। यही कारण है कि अम्बेडकर केवल दलित नेता नहीं, बल्कि वर्तमान भारत के सबसे लोकतांत्रिक विचारकों में से एक हैं।

भारतीय समाज को दलित आंदोलन ने यह प्रश्न पूछने पर मजबूर किया कि क्या लोकतंत्र सिर्फ चुनावों से आता है या सामाजिक संबंधों में समानता और सम्मान भी चाहिए। अम्बेडकर ने स्पष्ट उत्तर दिया—जब समाज में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव है, तो लोकतंत्र वास्तविक है। इसलिए अम्बेडकरवादी दलित आंदोलन आज भी भारतीय समाज के लिए एक लोकतांत्रिक भविष्य की दिशा और एक ऐतिहासिक विरासत है।

अंततः, कहा जा सकता है कि अम्बेडकर किसी एक कालखंड, वर्ग या समुदाय से नहीं जुड़ा है। वे सामाजिक न्याय को भारतीय लोकतंत्र की आत्मा से जोड़ते हैं। जब तक जाति-आधारित अपमान, असमानता और प्रतिनिधित्वहीनता जारी रहेगी, अम्बेडकर और दलित आंदोलन की वैचारिक जरूरत बनी रहेगी।

संदर्भ सूची

1. अम्बेडकर, बी. आर. (1936/1979). Annihilation of Caste. In V. Moon (Ed.), Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 1. Education Department, Government of Maharashtra.
2. अम्बेडकर, बी. आर. (1945/2013). What Congress and Gandhi Have Done to the Untouchables. In Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 9. Government of Maharashtra/Dr. Ambedkar Foundation.
3. अम्बेडकर, बी. आर. (1946/2013). Who Were the Shudras? In Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 7. Government of Maharashtra/Dr. Ambedkar Foundation.
4. अम्बेडकर, बी. आर. (1948/2013). The Untouchables: Who Were They and Why They Became Untouchables? In Dr. Babasaheb Ambedkar: Writings and Speeches, Vol. 7. Government of Maharashtra/Dr. Ambedkar Foundation.
5. कीर, धनंजय. (1954). Dr. Ambedkar: Life and Mission. Bombay: Popular Prakashan.
6. ऑमवेट, गेल. (1994). Dalits and the Democratic Revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit Movement in Colonial India. New Delhi: Sage Publications.
7. ज़ेलियट, एलेनोर. (2001). From Untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar Movement (3rd ed.). New Delhi: Manohar Publishers and Distributors.
8. जाफ्रेलो, क्रिस्टोफ. (2005). Dr Ambedkar and Untouchability: Analysing and Fighting Caste. London: Hurst/Orient BlackSwan.
9. मेंडेलसन, ओलिवर, और विचियानी, मारिका. (1998). The Untouchables: Subordination,

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

Publisher: SARC Publisher

Poverty and the State in Modern India. Cambridge: Cambridge University Press.

10. रावत, रामनारायण एस. (2011). Reconsidering Untouchability: Chamars and Dalit History in North India. Bloomington: Indiana University Press.
11. रेगे, शार्मिला. (2013). Against the Madness of Manu: B. R. Ambedkar's Writings on Brahmanical Patriarchy. New Delhi: Navayana.
12. तेलतुंबड़े, आनंद. (2018). Republic of Caste: Thinking Equality in the Time of Neoliberal Hindutva. New Delhi: Navayana.

Source of support: Nil; **Conflict of interest:** Nil.

Cite this article as:
डॉ नरेश कुमार वर्मा, "बाबा साहेब अम्बेडकर और दलित आंदोलन: सामाजिक न्याय, राजनीतिक प्रतिनिधित्व और मानवीय समानता का पुस्तक-आधारित समीक्षात्मक अध्ययन." *Sarcouncil Journal of Humanities and Cultural Studies* 4.4 (2025): pp 10-16.

Copyright © 2022 The Author(s): This work is licensed under a Creative Commons Attribution- NonCommercial-NoDerivatives 4.0 (CC BY-NC-ND 4.0) International License

Publisher: SARC Publisher